समाज में साहित्य की भूमिका
(कबीर के सन्दर्भ में विशेष)

-डॉ. रश्मि कुमारी
एसो.प्रो. हिन्दी,
कु. मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबुद्ध नगर

सारांश

समाज-रचना के लिए कबीर-ने कोई सुधारवादी आंदोलन नहीं चलाया। दयानन्द सरस्वती, राजा राम मोहन राय, स्वामी राम तीर्थ अथवा रामकृष्ण परमहंस की कोटि में उन्हें नहीं रखा जा सकता। उनकी चेतना मूलत: आध्यात्मिक थी। वह स्वभाव से संत थे किन्तु कर्म से साधक और सुधारक। वह न समझौतावादी थे और न पलायनवादी। वह सामाजिक वैषम्य से क्षुब्ध थे। दलित और शोषित वर्ग के प्रति उनमें गहरी सहानुभूति थी। समाज-कल्याण उनका लक्ष्य था। अभ्युदय के साथ नि:श्रेयस उनकी कामना थी। कविता के लिए कविता उनका ध्येय नहीं था। उनकी गहन अनुभूति ही अभिव्यक्ति का आधार है। इसीलिए उनकी वाणी में समाज के विविध चित्र हैं। उनमें गहन सत्य ही मुखर हुआ है।

मुख्य शब्द

समाज, कर्मकाण्ड, भेदभाव, एकता, मिथ्याचार, जातिप्रभा, साहित्य

कबीर के आविर्भाव काल में समाज की दशा अत्यन्त विषम एवं शोचनीय थी। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था-विचार भी रूढ़िगत मान्यताओं एवं अंध-विश्वासों में पर्यवसित हो चुका था। फलत: मानव जीवन सार्थकता का स्रोत अवरूद्ध हो रहा था। सारा समाज एक प्रकार की जड़ता और मूल्य-मूढ़ता की स्थित को पहुंच चुका था। असत्य को ही सत्य माना जाता था। सारा समाज वर्ण-आश्रम, वेद-शास्त्र, तप-तीर्थ, व्रत-पूजा, काजी-मुल्ला, स्त्री-पुरुष, देवी-देवता, पीर-पैगम्बर सभी विषय-वासना से ग्रस्त थे। धर्म के नाम पर पाखण्ड और मिथ्याचार को बढ़ावा मिल रहा था, कथनी-करनी में कोई साम्य नहीं था। छल और धूर्तता का साम्राज्य था। नाना प्रकार के सम्प्रदाय जन्म ले चुके थे। तथाकथित साधुओं की भीड़ चतुर्दिक दिखाई पड़ती थी। जिनकी वेशभूषा सन्तों जैसी थी किन्तु आचरण निम्न कोटि का था समाज में ऐसे साधुओं की भीड़ देखी जा सकती थी जो आध्यात्म चिंतन के लिए विरक्त नहीं हुए थे अपितु मठाधीश बन कर शिष्यों की अपार मण्डली बना कर ऐश्वर्य-भोग में ही लिप्त रहते थे।

स्वामी हूता सेंत का पैकाकार पचास।
राम नाम काठै रहा, करै सिखा की आस॥ (चाणंक को अंग)

वर्ण व्यवस्था और जातिवाद

कबीर के समय एक ओर साधु सन्यासियों की मण्डली धर्म के नाम पर मिथ्याचार और

पाखंड को बढ़ावा देकर सामान्य जन को दिग् भ्रमित कर रही थी तो दूसरी ओर सारा समाज वर्ण व्यवस्था और जातिगत श्रेष्ठता-हीनता की जकड़बन्दी का शिकार हो रहा था। वर्ण व्यवस्था पर प्रतिष्ठत सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मण सर्वोपरि था वह धर्मशास्त्र का नियामक था उसने सभी वर्गों के मनुष्यों के लिए कर्म विभाजन करके अपने लिए अध्ययन अध्यापन, यज्ञ अनुष्ठान आदि सुरक्षित करके न केवल समाज का उच्चतम स्थान सुरक्षित कर लिया था अपितु भू-देव बन कर शेष समाज को अपना अनुयायी बना लिया था मध्यकाल तक आते आते वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिणत हो गई। वर्ण केवल चार थे। किन्तु जातियों की संख्या बढ़ती चली गई। कुछ जातियां व्यवसाय के आधार पर अस्तित्व में आयी। धीरे-धीरे समाज के निम्न वर्गों के प्रति भेदभाव बढ़ता जाने लगा। कुछ जातियों को अस्पृश्य मान कर घृणा की दृष्टि से देखा गया। शूद्रों के लिए वेद अध्ययन और मंदिर में प्रवेश भी वर्जित कर दिया गया। उन्हें अछूत की संज्ञा दे दी गई तथा सामाजिक धार्मिक अधिकारों से वंचित कर आर्थिक दृष्टि से भी उनका भरपूर शोषण किया गया। हिन्दी सन्त काव्य में इस सामाजिक वैषम्य की घोर प्रतिक्रिया मिलती है। सन्त कवियों ने जातिगत श्रेष्ठता के सिद्धांत को स्पष्टतया अस्वीकार कर दिया तथा इस विकृत व्यवस्था का खुल कर विरोध किया। कबीर भी लकीर पर चले नहीं बल्कि नवीन लकीर का निर्माण किया। उन्होंने जन्मगत श्रेष्ठता को पूर्णतया अस्वीकार कर दिया और कहा कि यदि सृष्टा के मन में वर्ण व्यवस्था होती तो वह मानव के जन्म देते ही ब्राह्मण के मस्तक पर तीन चिन्हों का तिलक क्यों नहीं लगा देता है। कबीर कहते हैं कि वास्तविक ब्राह्मण वहीं है जो ब्रह्म को जनता हैं किन्तु समाज में ब्राह्मण वे कहे जाते है जो ब्रह्म को नहीं जानते केवल यज्ञ में प्राप्त धन से अपना पेट पालते हैं।

छुआछूत

पुरोहित वर्ग के मिथ्याचारों के फलस्वरूप ही समाज में ऊँच-नीच की भेदभावना का प्रसार हुआ और छुआछूत की बीमारी बढ़ती चली गई। इसका कुपरिणाम आज भी देखा जा सकता है। कबीर ने इसका खुले शब्दों में प्रतिकार किया वह सीधे पंडित से प्रश्न करते है बताओं छूत क्या है और कहां से उत्पन्न हुई है। कबीर की मान्यता है कि वास्तविक पवित्रता मानसिक विकारों का त्याग है, शेष सब दिखावा है इसलिये वह पाखंडी पंडित प्रश्न करते हैं कि हे पंडित तुम वह स्थान बताओं जो सर्वथा पवित्र है मैं वहीं भोजन करूँ-

कहु पंडित सूचा कवन ठाउ। जहां वैसि हउँ भोजन खाउं।
माता जुठी पिता भी जूठा, जूठै ही फल लागे।
आवहिं जूठे जाहिं भी जूठे, जूठे मरहिं अभागे।।
अगिनि भी जूठी पानी जूठा, जूठै वैसि पकाया।
जूठी करछी अन्न परोसा, जूठै जूठा खाया।।

बाह्याचार खण्डन

कबीर अपने समय के सर्वाधिक जागरूक एवं संवेदनशील प्राणी थे। उनकी पैनी दृष्टि से समाज की कोई गतिविधि छिपी न रह सकती थी। धर्म के नाम पर जो विविध प्रकार

के बाह्याचार प्रचलित थे कबीर ने उनकी तीखी आलोचना की जहाँ उन्होंने हिन्दू धर्म में प्रचलित जप-तप-छापा-तिलक व अन्य कर्मकाण्डों की निःसारता का उल्लेख किया है वहीं दूसरी ओर मुस्लिम धर्मानुयायियों के रोजा नमाज तथा धर्म के नाम पर की जाने वाली हिंसा की निंदा की है। वस्तुतः वे विभिन्न धर्मों में प्रचलित ऐसे कर्मकाण्डों की निंदा कर रहे थे जो मनुष्य को मनुष्य से अलग कर रहे थे। उनकी मान्यता थी की धार्मिक रूढ़ियों की जकड़बन्दी के कारण मनुष्य उदारता, बन्धुत्व भावना आदि सद्गुणों से वंचित हो जाता है।

कबीर ने हिन्दू विधि विधानों की निरर्थकता पर प्रहार करने के साथ ही नाथ योगियों, जैनियों तथा मुस्लिम समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों का भी विरोध किया। शासकों के निरंकुश और भेदभाव पूर्ण व्यवहार तथा मुल्ला मौलवियों की संकीर्ण धार्मिक नीतियों के कारण हिन्दू मुस्लिम समुदाय न केवल एक दूसरे से पृथक हो गये थे, अपितु दोनों धर्मानुयायियों में परस्पर घृणा और विद्वेष का भाव भी बढ़ गया था। मुसलमान हिन्दुओं को काफिर मानते थे और हिन्दू मुसलमानों को मलेच्छ। दोनों की जीवन पद्धति में महान अंतर था। एक एकेश्वर वादी था, तो दूसरा मूर्ति पूजकर एक जातिगत भेदभावना से ग्रस्त था, तो दूसरा धार्मिक जकड़बंदी का शिकार। इस प्रकार दोनों में भेदभाव की खाई गहरी होती जा रही थी। धर्म के नाम पर हिन्दू मुस्लिम दोनों समुदायों में पशु-बलि की प्रथा प्रचलित थी। कबीर इस सामाजिक अव्यवस्था व धार्मिक संकीर्णता से क्षुब्ध थे। वे सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करके ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जो हर प्रकार के वैषम्य और अंधविश्वास से मुक्त हो। वस्तुतः वे सत्य के प्रचारक थे। उनकी कविता सत्य के प्रचार का प्रभावपूर्ण माध्यम थी। वे इस बात से दुःखी थे कि सामंती व्यवस्था में धरती पर सामंतों का अधिकार था, तो धर्म पर उन्हीं के समर्थक पुरोहितों का। कबीर ने धर्म पर से पुरोहितों का यह इजारा तोड़ा और अछूतों को सांस लेने का मौका मिला। यह विश्वास मिला की पुरोहितों और शास्त्रों के बिना उनका काम चल सकता है।

हिन्दु मुस्लिम एकता का प्रतिपादन

कबीर के उपदेशों की मौलिकता यह थी कि उन्होंने अपने समय के हिन्दुओं और मुसलमानों का ध्यान ऐसे धर्म की ओर आकृष्ट किया, जो साम्प्रदायिक सीमाओं से परे सार्वभौम पथ का था। ऐसा मार्ग जिस पर दोनों सम्प्रदाय के लोग एक साथ चल सकते थे। कबीर ने ऐसे भविष्य की कल्पना की थी, जो सभी प्रकार की विषमताओं से परे हो। उन्होंने ऐसे धर्म का प्रचार किया जिसका आधार विश्वास और व्यक्तिगत अनुभव था। उन्होंने निःसंकोच भाव से सभी प्रकार के मताग्रहों का विरोध किया क्योंकि उनकी आत्मा साम्प्रदायिक संघर्षों और औपचारिक धार्मिक मान्यताओं को लेकर उत्पन्न विवादों से दुःखी थी। उन्होंने ईश्वर की तलाश के लिए यर्थाथ पर बल दिया। उनका संदेश था कि सत्य स्वाभाविक है और सभी प्रकार के बनावटी पन से मुक्त है। कबीर की दृष्टि में हिन्दू और मुसलमान दोनों धर्म के वास्तविक मर्म को नहीं समझते। पारमार्थिक सत्य एक है यह जान लेने पर सभी प्रकार के धार्मिक विवाद स्वतः समाप्त हो जाते हैं।

वस्तुतः कहा जा सकता है कि भक्ति काल के समय समाज में जो परिस्थितियाँ मौजूद थी कदाचित आज का समाज भी उनसे अछूता नहीं है, वर्तमान समय में भी कबीर प्रासांगिक नजर आते है।

सन्दर्भ -

1 कबीर के आलोचक- डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, 1997

2 कबीर का सामाजिक दर्शन- डॉ. प्रहलाद मौर्य, पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1974

3 अकथ कहानी प्रेम की- डॉ. पुरूषोत्तम अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, 2016

4 हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि- डॉ. डी.पी. सक्सैना, अग्रवाल प्रकाशन, 2019

5 कवि कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 2019